दशलक्षण धर्म

अग्निके संयोगसे पानी गर्म हो जाता है और उसके असंयोगमें वह ठण्डा रहता है। ठण्डापन पानीका निज स्वभाव है, उसका अपना धर्म है और गर्मपना उसका स्वभाव नहीं है, विभाव है, अधर्म है। वस्तुका अपनी प्राकृतिक (स्वाभाविक) अवस्थामें रहना उसका अपना स्वरूप है, धर्म है। पानीको अग्निका निमित्त न मिले तो पानी हमेशा ठण्डा ही रहेगा, वह कभी गर्म न होगा।

इसी तरह कर्मके निमित्तसे आत्मामें क्रोध, मान, माया और लोभआदि विकार (विभाव) उत्पन्न होते हैं। यदि आत्माके साथ कर्मका संयोग न रहे तो उसमें न क्रोध, न मान, न माया और न लोभादि उत्पन्न होंगे। इससे जान पड़ता है कि आत्मामें उत्पन्न होनेवाले ये संयोगज विकार हैं। अतएव ये उसके स्वभाव नहीं हैं, विभाव हैं, अधर्म हैं। कर्मकी प्रागभाव और प्रध्वंसाभावरूप अवस्थामें वे विकार नहीं रहते। उस समय वह अपने क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच आदि निज स्वभावमें स्थित होता है। यथार्थमें वस्तुका असली स्वभाव उसका धर्म है और नकली—औपाधिक स्वभाव अर्थात् विभाव उसका अधर्म है। आचार्य कुन्दकुन्दने स्पष्ट कहा है कि **'वत्थु-सहावोधम्मो'** वस्तुका स्वभाव धर्म है और विभाव अधर्म। आत्माका असली स्वभाव क्षमादि है, इसलिए वह उसका धर्म है और क्रोधादि उसका नकली स्वभाव अर्थात् विभाव है, अतः वह उसका अधर्म है।

इस सामान्य आधारपर जीवोंको अपने स्वभावमें स्थित रहनेका और कर्मजन्य विभावोंसे दूर रहने अथवा उनका सर्वथा त्याग कर देनेका उपदेश दिया गया है।

आत्मामें कर्मके निमित्तसे यों तो अनगिनत विकार प्रादुर्भूत होते हैं। पर उन्हें दश वर्गों (भागों)में विभक्त किया जा सकता है। वे दश वर्ग ये हैं :

१. क्रोध वर्ग	६. हिंसा वर्ग
२. मान वर्ग	७. काम वर्ग
३. माया वर्ग	८. चोरी वर्ग
४. लोभ वर्ग	९. परिग्रह वर्ग
५. झूठ वर्ग	१०. अब्रह्म वर्ग

मुमुक्षु (गृहस्थ या साधु) जब आत्म-स्वभावको प्राप्त करनेके लिए तैयार होता है तो वह उक्त क्रोधादिको अहितकारी और क्षमादिको हितकारी जानकर क्रोधादिसे निवृत्ति तथा क्षमादिकमें प्रवृत्ति करता है। सर्वप्रथम वह क्षमाको धारण करता है और क्रोधके त्यागका केवल अभ्यास ही नहीं करता, अपितु उसमें प्रगाढ़ता भी प्राप्त करता है। इसी तरह मार्दवके पालन द्वारा अभिमानका, आर्जवके आचरण द्वारा मायाका, शौचके अनुपालन द्वारा लोभका, सत्यके धारण द्वारा झूठका, संयमको अपनाकर हिंसाका, तपोमय वृत्तिके द्वारा काम (इच्छाओं) का, त्यागधर्मके द्वारा चोरीका, आकिंचन्यको उपासना द्वारा परिग्रहका और ब्रह्मचर्य पालन द्वारा अब्रह्मका निरोध करता है और इस प्रकार वह क्षमा आदि दश धर्मोंके आचरण द्वारा क्रोध आदि दश आत्म-विकारोंको दूर करनेमें सतत संलग्न रहता है। ज्यों-ज्यों उसके क्षमादि गुणोंकी वृद्धि होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाती है त्यों-त्यों उसके वे क्रोधादि विकार भी अल्पसे अल्पतर और अल्पतम होते हुए पूर्णतः अभावको प्राप्त हो जाते हैं। जब उक्त गुण सतत अभ्याससे पूर्णरूपमें विकसित हो जाते हैं तो उस समय आत्मामें कोई विकार शेष नहीं रहता और आत्मा, परमात्मा बन जाता है। जब तक इन विकारोंका कुछ भी अंश विद्यमान रहता है तब तक वह परमात्माके पदको प्राप्त नहीं कर सकता।

जैन दर्शनमें प्रत्येक आत्माको परमात्मा होनेका अधिकार दिया गया है और उसका मार्ग यही 'दश **धर्मका पालन**' बतलाया गया है। इस दश धर्मका पालन यों तो सदैव बताया गया है और साधुजन पूर्णरूपसे तथा गृहस्थ आंशिक रूपसे उसे पालते भी हैं। किन्तु पर्यूषण पर्व या दशलक्षण पर्वमें उसकी विशेष आराधना की जाती है। गृहस्थ इन दश धर्मोंकी इन दिनों भक्ति-भावसे पूजा करते हैं, जाप देते हैं और विद्वानोंसे उनका प्रवचन सुनते हैं। जैनमात्रकी इस पर्वके प्रति असाधारण श्रद्धा एवं निष्ठा-भाव है। जैन धर्ममें इन दश धर्मोंके पालनपर बहुत बल दिया गया है।

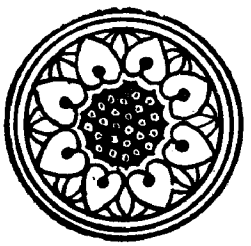

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org